मार्च १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

आत्म-कथन

कैसे सज्जन लोग - ऊ ति हान

जब मैं अपने पूर्वकालिक जीवन पर नजर डालता हूं तो एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व मेरी स्मृतिपटल पर अत्यंत स्पष्ट रूप से उभर कर आता है। वह है मित्र ऊ ति हान। मेरे व्यावसायिक जीवन में न जाने कितने कनिष्ठ, वरिष्ठ शासकीय अधिकारियों से मेरा संपर्क हुआ। परंतु यह व्यक्ति उन सब में अनोखा है। ऊ ति हान ने राज्य शासन में सेवारत रहते हुए अपने उत्तरदायित्व को स्वच्छ नैतिकता के आधार पर नितांत निष्ठापूर्वक ,कुशलकर्मठतापूर्वकऔर अनिंद्य ईमानदारी पूर्वक निभाया।

मेरा संपर्क उससे तब हुआ जब कि वह इस सदी के छठे दशक के आरंभ में रक्षा मंत्रालय के खरीदी निदेशालय के महत्त्वपूर्ण निदेशक पद पर आसीन हुआ। यह निदेशालय बर्मी फौज के लिए खाद्य-पदार्थों से लेकर जल, थल और वायुसेना के कीमतीसे कीमती हथियारों और अन्य फौजी उपकरणों की खरीदी करता था, जो कि हर वर्ष अरबों रूपयों की होती थी। इस खरीदी में करोड़ों की हेरा-फेरी हो सकती थी। अतः इस पद के लिए नितांत विश्वास-पात्र की आवश्यकता थी। बर्मी सरकार ने इस पद के लिए ऊ ति हान का चुनाव ठीक ही किया।

लगभग इसी समय इस विभाग से मेरा भी व्यावसायिक संपर्क हुआ। मैं विशेषतः फौज के वस्त्रों की सप्लाई के काम से जुड़ा था। आरंभ के दिनों में ही मैंने यह जान लिया कि यह व्यक्ति अत्यंत ईमानदार है, सरल है, स्वच्छ है और इसका समस्त व्यवहार पारदर्शी है। ऐसे सरकारी अधिकारी के साथ काम करते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता होती थी। मैंने देखा कि लगभग दस वर्षों के कार्यकालमें उसने अपनी नेकनीयती और कार्यकुशलताके बल पर कपड़े की खरीदी में कमसे कम २५% कीकिफायतकर दिखाई, जब कि इन्हीं दस वर्षों में कपड़े के दामों में लगभग २५% की वृद्धि आई थी। अवश्य ही अन्य सामग्रियों की खरीदी में भी उसने इसी प्रकार बचत की होगी। कपड़े और कपड़े के बने परिधानों के दाम गिराने में उसे मेरा पूरा सहयोग था। अतः मुझे इस क्षेत्र की स्पष्ट जानकारी है। यह सब ऊ ति हान की निष्कलंक सेवा, न्याय-नीति और लगन का ही परिणाम था।

न्याय-नीति ऐसी कि माल की खरीदी में न सरकार को नुकसान हो और न ही सप्लायर को।मुझे याद है मेरा एक प्रतिद्वंद्वी सोहनलाल गोलियान को गुरखा-हैट का एक बहुत बड़ा आर्डर मिला। माल पहुँचने पर इंस्पेक्सन विभाग ने उसे नापास कर दिया। उसे कहा गया कि इसे वापस देश के बाहर भेजो। बेचारे गोलियान की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। बाहर किसे भेजे? इटली से जिस उत्पादक ने यह हैट बना कर भेजे थे वह किसी कीमत पर वापस नहीं लेगा। क्योंकि यह बर्मी सेना की स्पेसीफिकेशनके अनुसार बनाए गए थे। अन्य कहीं इसके ग्राहक मिल नहीं सकते थे। अन्य कहींबिक नहीं सकते थे।

गोलियान ने इस विभाग में नया-नया प्रवेश किया था। सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने की चोट से हड़बड़ा उठा। व्यापार में मेरा प्रतिद्वंद्वी होने पर भी व्यक्तिगत रूप से उसके साथ मेरे स्नेह-संबंध थे। वह अपनी समस्या मेरे पास लेकर आया। मैंने उसकी व्यथा सुनी। उसकी सप्लाई का सैंपल देख कर दंग रह गया। सचमुच उसके साथ अन्याय हुआ था। जो गल्ती निकाली गयी वह इतनी मामूली थी कि इसकी वजह से सारे माल को वापस भेज देने का आर्डर देना न्याय संगत नहीं था। इसे फौज द्वारा प्रयोग करने में कहींकोईकठिनाईनहीं थी। मैंने उसे सलाह दी कि वह निदेशक से स्वयं मिले और उसे अपना केस समझाए। वह ऐसी गैर-इंसाफ़ी कभी नहीं होने देगा। मैंने उसे समझाया कि यह व्यक्ति अत्यंत न्यायप्रिय है और भ्रष्टाचार-विरोधी है। तुम्हारा केस इसके समझ में आ जायगा तो यह अवश्य तुम्हारी सहायता करेगा।उसने ऐसा ही किया।ऊ ति हान से मिल कर अपना केस समझाया। ऊ ति हान को बात समझ में आ गयी। लेकिनइस भाई के बात समझ में नहीं आयी। वह शाम को एक अटैची में नोट भर कर ऊ ति हान के घर पहुँचा। ऊ ति हान यह देख कर बहुत झुँझलाया और उसे निकाल बाहर किया। उसकी यह हरकत ऊ ति हान को बहुत बुरी लगी, लेकिन फिर भी उसके न्याय-नीतिपूर्ण निर्णय में कोई फर्क नहीं पड़ा। प्रोक्यूअरमेंट की अगली बैठक में उसने उसका माल स्वीकार करवा दिया।

उसके जीवन की विशुद्धता ने ही मुझे इसकी ओर आकर्षित किया। हम दोनों अच्छे मित्र बन गए। धर्म के क्षेत्र में भी हमारी मित्रता बढ़ी। अतः उसे सरकारीकाम-काजमें कोईकठिनाई उत्पन्न होने पर मेरे जैसे प्राइवेट व्यापारी से सलाह मशविरा करनेमें कभी हिचक नहीं हुई।

ऊ ति हान के साथ मेरे घनिष्ठ संबंध धर्म को लेकर और आगे बढ़े। उन दिनों वह एक चमत्कारी तांत्रिक सिद्ध पुरुष के प्रभाव में था। मैं भी ऊ ति हान के कारण उसके संपर्क में आया। दो-एक विस्मयजनक चमत्कारोंका प्रत्यक्षीकरण करनेके अतिरिक्त मैं उससे बहुत प्रभावित नहीं हुआ। आगे जाकर ऊ ति हान और उसकी पत्नी जो कि उसी की तरह बहुत सरल और शांत स्वभाव की महिला है, तंत्र के मार्ग को छोड़ कर विपश्यना साधना में लग गए।

हमारी मित्रता दिन-पर-दिन बढ़ती गयी। आपत्कालीनसैनिक सरकार बनने पर ऊ ति हान व्यवसाय और उद्योग मंत्रालय का मंत्री बना। बर्मी चावल बेचने के लिए एक सरकारीप्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व करते हुए उसे दिल्ली जाना था। परंतु भावों को लेकर दिल्ली ने कड़ा रुख अपना रखा था। ऊ ति हान ने मुझे प्रतिनिधि मंडल के साथ चलने को कहा।मैंने स्वीकारकिया।उन दिनों भारत सरकार का खाद्यमंत्री श्री एस. के .पाटिल था, जिससे मेरा परिचय था। एक बार जब वह बंबई कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष था और किसी काम से दो दिनों के लिए रंगून आया था तब उसने मेरा आतिथ्य स्वीकार किया था। प्रतिनिधि मंडल नई दिल्ली पहुँचा। बात-चीत शुरू हुई। मंत्रालय का सचिव भाव पर अड़ा रहा। विश्व के बाजार भाव में खरीदने के लिए वह तैयार नहीं था। उसका कहना था कि वह बड़ी मात्रा में चावल खरीद रहा है अतः कमदाम

देगा होगा। बर्मी सरकार को यह मंजूर नहीं था। आखिर श्री पाटिल से मिलने पर यह सौदा ठीक भाव पर तय हो गया। हम सब इससे खुश हुए।

एक बार उसे व्यापार प्रतिनिधि मंडल की अध्यक्षता करते हुए रूस तथा अन्य साम्यवादी देशों में जाना पड़ा। फिर उसने मुझे साथ चलने को कहा।वहां बड़ी उलझन थी। रूसी सरकार ने बड़ी मात्रा में बर्मी चावल ले रखा था, जिसके बदले में उसे बार्टर ट्रेड के अधीन अपने यहां बने उपभोक्ता सामान देने थे। परंतु उसके पास ऐसा कोई सामान नहीं था जो हमारे काम आ सके ।दो-तीन दिनों की जद्दोजहद के बाद उसने यह स्वीकार किया कि जितनी कीमत के चावल उसने खरीदे हैं उसके बदले रूस को छोड़ कर अन्य पूर्वी यूरोपियन देशों से हम जो चाहें, वह माल खरीद सकते हैं। इस प्रकार इस समस्या का संतोषजनक समाधान निकला।

आगे जाकर क्रांतिकारी सैनिक सरकार बनने पर ऊ ति हान फिर कैबिनेट मंत्री बना। इस बार उसे विदेश मंत्रालय का उत्तरदायित्व सौंपा गया, जिसे उसने बहुत सफलतापूर्वक संभाला।

उन दिनों मेरी मां, जो कि एक-दो वर्ष पूर्व भारत चली आयी थी, अत्यंत अस्वस्थ हो गयी। यह रोग मानसिक तनाव के कारण था। डाक्टरी उपचार से कोई लाभ नहीं हो रहा था। मैं खूब समझता था कि विपश्यना साधना करेगी तो इस व्याधि से सर्वथा मुक्त हो जायगी। पर भारत में उसे विपश्यना कौन सिखाए? विपश्यना सिखाने वाला तो दूर, भारत ने तो इस विद्या को ही भुला दिया। इसका नाम तक भुला दिया। अतः मैंने ऊ ति हान से मिल कर अपना मंतव्य प्रकट किया कि अगर मैं भारत जा सकूं तो व्याधिग्रस्त माता की सेवा कर सकूंगा।उसे विपश्यना सिखा सकूंगा।उसके साथ हो सकता है और भी कुछ लोग इस विद्या का लाभ ले सकें ।परंतु सरकारी नीति के अनुसार ऐसा हो सकना असंभव था। उन दिनों सरकार केवल उन्हें ही पासपोर्ट देती थी जो कि या तो सदा के लिए बर्मा छोड़ कर चले जायँ अन्यथा विदेश में उन्हें कोई नौकरी मिल जाय। अन्य किसी कारण से पासपोर्ट नहीं दिया जा सकता था। परंतु मानवीयता का आधार बना कर ऊ ति हान ने मेरा आवेदन-पत्र कैबिनेट को चढ़ाया और फिर देश के सर्वेसर्वा से मिला और एक असाधारण घटना घटी कि इस मुद्दे के आधार पर मुझे पासपोर्ट मिल गया।

मैं २२ जून १९६९ को भारत आकर जुलाई महीने में ही पहला शिविर लगा सका, जिसमें मेरी माता, पिता तथा अन्य कुछ लोग सम्मिलित हुए। सब को अपूर्व लाभ हुआ। माता व्याधि-मुक्त हुई। औरों को भी अप्रत्याशित लाभ हुआ। अतः आगे के लिए शिविरों की मांग होने लगी और यों शिविर-पर-शिविर लगने लगे।

मैं केवल तीन महीने रहने के निश्चय से भारत आया था। परंतु अब तो विपश्यना के शिविरों की इतनी मांग उठी कि शिविरों का तांता लग गया। मैंने ऊ ति हान से पूछा कि क्या मैं अधिक समय तक शिविर लगाता रहूं? उसने उत्तर भिजवाया कि मेरे पासपोर्ट की अवधि पांच वर्ष तक की है। अतः इतने समय तक इस अच्छे काम में लगे रहने से किसी को कोई एतराज नहीं होगा। इस प्रकार उसके सहयोग से दो शहस्त्राब्दियों के बाद भारत में धर्म-गंगा पुनः निर्बाधरूप से प्रवहमान हो सकी।पांच वर्ष के पश्चात बर्मी दूतावास ने मेरे पासपोर्ट की अवधि पांच वर्ष के लिए और बढ़ा दी।

इस बीच बहुत बड़ी संख्या में विदेशों के शिविरार्थी विपश्यना के शिविरों में भाग लेने लगे। उनका दबाव पड़ने लगा कि विपश्यना उनके देशों में भी सिखाई जाय ताकि उनके स्वजनों, परिजनों, बंधु-बांधवों को भी इस कल्याणकारी विद्या का लाभ मिले। परंतु मैं असमर्थ था। मेरे पासपोर्ट पर केवल भारत का एंडोर्समेंट था। मैंने अन्य देशों के एंडोर्समेंट देने के लिए बर्मी सरकार को आवेदन-पत्र चढ़ाए, पर सफलन हुआ। ऊ ति हान के सुझाव पर मैंने बर्मा के प्रधानमंत्री को अपील चढ़ाई और फिर सर्वेसर्वा जनरल नेविन को भी, पर कहीं सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब ऊ ति हान ने मुझे धर्म-अधिष्ठान करने की सलाह दी। इसके बल पर भारतीय नागरिकता ग्रहण कर विश्व के अन्य देशों में भी विपश्यना का प्रसारण कर सका।

भारत और भारत के बाहर कुछ वर्षों तक विपश्यना द्वारा लोगों की धर्मसेवा करते हुए मन में एक कामना उठी कि मैं एक तीर्थ-यात्री के रूप में अपनी जन्मभूमि जा कर वहां अपने धर्मबंधुओं से तथा अन्य जानकार लोगों से मिल कर साधना संबंधी कई एक प्रश्नों का समाधान प्राप्त कर सकूं ।लेकिन मुझे बर्मा लौटने के लिए वीसा नहीं मिल सका। उस समय की सरकार की यही पालिसी थी कि जो बर्मी नागरिक विदेश में जा कर अपनी नागरिकता बदल लेता है वह किसी हालत में पुनः बर्मा नहीं लौट सकता। यद्यपि मैंने अपनी नागरिकता किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए, याने व्यापार-धंधे के लिए अथवा किसी राजनैतिक उपलब्धि के लिए नहीं बदली थी, महज धर्मसेवा के लिए बदली थी, परंतु कानून तो कानून है, वह सब पर एक जैसा लागू होता है। मैंने फिर ऊ ति हान से संपर्क किया।वह भी कुछ कर सकने में असफल रहा। उसने फिर धर्म-अधिष्ठान करने का ही परामर्श दिया और मैंने यही किया।मेरे लिए जन्मभूमि लौट सकने पर लगी हुई सरकारी रोक दूर हुई। सारे दरवाजे अपने आप खुल गए। बल्कि बर्मी सरकार ने मुझे सरकारी अतिथि के रूप में आमंत्रित किया।तब से कई बार अपनी मातृभूमि में जाना हुआ। वहां भी शिविर लगने लगे। रंगून में धर्मज्योति और मोगोक में धर्मरतन केंद्र की स्थापना हुई। मांडले में धर्ममंडल खुलने की तैयारी होने लगी। अन्य स्थानों पर भी इस विद्या की मांग आने लगी। भारत से अनेक सहायक आचार्य वहां जाकर शिविर लगाने लगे। यहां तक कि वहां के भिक्षुओं के लिए भी तीन शिविर लगे। मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हुआ। मैं भारत का ऋण चुकाने के लिए गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन की धर्मकामना पूरी कर सका। विश्व में विपश्यना फैलाने की उनकी धर्म-कामना भी पूरी कर सका। और अब मैं पूज्य गुरुदेव का ऋण तो क्या चुका सकता? पर अपनी मातृभूमि का ऋण चुकाने का यत्किंचित प्रयास कर सका।जब से बर्मा में शिविर लगने लगे तो देखा कि भारत में तथा विश्व में यह धर्मगंगा और अधिक वेग से प्रवहमान होने लगी और अधिक लोगों का कल्याण सधने लगा।

इस अपूर्व पुण्यलाभ में मेरे मित्र ऊ ति हान का बहुत बड़ा योगदान रहा। वह इस अनर्घ पुण्य में भागीदार हो! इस पुण्य के बल पर वह अपने परिवार सहित दीर्घायु हो, सुखी हो, स्वस्थ हो और स्वयं धर्म के मार्ग पर चलते हुए भवमुक्त अवस्था प्राप्त कर सके, यही मंगल कामना है!

मंगल मित्र,
सत्यनारायण गोयन्का.